बालिकाओं में शैक्षिक जागृति

डॉ0 आश्वती वर्मा

19वीं सदी के तीसरे दशक में बालिकाओं की शिक्षा के लिए पहला सार्थक प्रयास ज्योतिराव फुले ने किया। तत्कालीन ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देते हुए उन्होंने इसके लिए स्वयं अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले को पढ़ाया। सावित्रीबाई ज्योतिबा राव द्वारा जनवरी 1848 ई॰ में खोले गये विद्यालय की प्रथम छात्रा थीं और कालांतर में वहीं अध्यापन का कार्य शुरू किया। नवजागरण काल में विभिन्न समाज सुधारकों ने नारी की स्थिति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और उन्हें शिक्षा के माध्यम से समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाल में कन्याओं के लिए सन् 1855 से 1858 के बीच 40 स्कूल खोलें। वह इन किशोरियों से कोई फीस नहीं लेते थे तथा नि:शुल्क पाठ्य-पुस्तकें तथा अन्य सामग्री उपलब्ध कराते थे। श्री देवेन्द्रनाथ सेन की उपलब्धि उल्लेखनीय है। वह ब्रह्म समाज के अग्रणी थे। उन्होंने नारी शिक्षा प्रसार के कई ब्रह्म कन्या स्कूल खोलें। सन् 1863 में उन्होंने 'सोसायटी ऑफ थियोस्टिक फ्रेन्डस' स्थापित की। उन्होंने एक मासिक पत्रिका 'बामाबोधिनी' का भी प्रकाशन शुरू किया। स्वामी विवेकानन्द ने भी सिस्टर निवेदिता के सहयोग से लड़कियों के लिए स्कूल खोलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

समाज और शिक्षा का एक दूसरे से पारस्परिक कारण और परिणाम का संबंध है। किसी भी समाज का स्वरूप उसकी शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप को निध र्रित करता है और इस व्यवस्था का स्वरूप समाज के स्वरूप को निर्धारित करता है।'' इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा और समाज-दोनों अविच्छिन्न रूप से परस्पर गुँथे हुए है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करना है जिससे उसके हितों का समाज के हितों के साथ न्यूनतम संघर्ष हो और वह समाज के आदर्शों के अनुरूप अपने जीवन को व्यतीत कर सके।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि भारत में सन् 1854 में अंग्रेजी शिक्षा का महाधिकर पत्र माना जाने वाला 'वुड्स डिस्पैच' में पहली बार घोषणा की गयी थी कि सरकार को भारत की महिलाओं की शिक्षा के लिए स्पष्ट और सहयोग पूर्ण समर्थन देना चाहिए। आज स्वतंत्रता के 62 वर्षों बाद हम 58 प्रतिशत का स्तर उपलब्ध कर सके हैं। नीति निर्धारण के समय इस विकास की दर को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

सन् 1858 में महिला शिक्षा राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गयी। समिति का उद्देश्य था लड़कियों के प्राथमिक शिक्षा में वृद्धि, शिक्षा में बाधक प्रारम्भिक नियमों की समाप्ति, महिला शिक्षिकाओं में वृद्धि, प्राथमिक स्तर तक लड़कियों के लिए अलग शिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था, लड़के-लड़कियों के शिक्षा अंतराल की समाप्ति आदि। आर्थिक सहायता हेतु 'राष्ट्रीय महिला परिषद्' की स्थापना के कार्य उल्लेखनीय है। बीसवीं सदी में महात्मा गाँधी ने अपने रचनात्मक कार्यक्रमों में महिला शिक्षा एवं देशी शिक्षण पद्धति को लागू करने का आह्वान किया। उन्होंने नारी शिक्षा के महत्त्व को स्थापित करते हुए पुरुष एवं नारी के बीच समानता की बात कही।

प्राचार्या,नजरूल हसन टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, सोनहार, खगड़िया

भारत में हुए शैक्षिक प्रगति का बिहार पर गहरा प्रभाव पड़ा। यहाँ आर्य समाज के निर्देशन में कई शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना हुई। बालिकाओं के लिए अलग से कई विद्यालयों की स्थापना की गई। इससे बालिका शिक्षा में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। बिहार में स्त्री शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करने के लिए सन् 1959 में एक राष्ट्रीय समिति बनी थी जिसकी रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए सन् 1965 में एक और समिति बनायी गयी जिसका उद्देश्य लड़कियों की शिक्षा के सम्बन्ध में जन समर्थन के अभाव का विश्लेषण करना था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया था कि स्त्री शिक्षा की कमी का मुख्य कारण स्त्री शिक्षा के प्रति पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर पर उपेक्षा और उदासीनता का भाव है। दूसरे लड़कियों की शिक्षा को मूलतः अनुपयोगी माना जाता है। उन्हें घरेलू कामों में अधिक लगाया जाता है, उन्हें या तो स्कूल में भर्ती नहीं करवाया जाता था। छोटे भाई-बहनों का दायित्व संभालने को अथवा शीघ्र विवाह के कारण उनका स्कूल जाना छूट जाता था। इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सन् 1965 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में घोषणा की गयी थी कि "लड़कियों की शिक्षा पर न केवल सामाजिक न्याय की दृष्टि से बल दिया जाना चाहिए बल्कि इसलिए भी महत्व दिया जाए कि इससे सामाजिक परिवर्तन को गति मिलती है।

इस प्रस्तावित नीति में लड़कियों के लिए निकटतम केन्द्रों पर स्कूल, मुफ्त शिक्षा एवं वर्दी, दोपहर भोजन आदि की व्यवस्था की सिफारिश की गयी थी। यह दुःखद स्थिति है कि परवर्ती शिक्षा कार्यक्रमों और नीतियों में इन पहलूओं और सुझावों को अनदेखा ही किया गया, पिछले दशकों में स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में भी की गयी सरकारी घोषणाओं और कार्यवाहियों के साथ-साथ स्वयंसेवी संस्थाओं के समस्त प्रयासों के बाद भी स्त्री शिक्षा की वर्तमान इन दिशा में किए गये सरकारी प्रयासों, घोषणाओं और कार्यक्रमों की अपूर्णता को ही प्रमाणित करते हैं।

स्त्री शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति सन् 1958-59 ने इस बात का स्पष्ट उल्लेख किया था, कि स्कूल के पाठ्यक्रमों में न केवल विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं के योगदान को छिपाया जाता है, अपितु उन्हें पुरूषों से हीन बताया जाता है। अतः शिक्षा में व्याप्त इन असंतुलित दृष्टिकोण को बदले जाने की सिफारिश की गयी थी। इसी प्रकार सन् 1965 में स्कूल पाठ्यक्रमों में लिंगगत भेदभाव का अध्ययन करने के लिए एक समिति बनायी गई । सन् 1978 में भारत में स्त्री की दशा और स्तर का अध्ययन करने के लिए बनी समिति ने अपने अध्ययन विश्लेषण के दौरान पाया था कि स्कूलों के पाठ्यक्रम, स्त्री-पुरूष में असमानता के परम्परागत पूर्वाग्रह और मान्यताओं को ही दृढ़ करते हैं। लड़कियों को सीता और सावित्री का आदर्श देकर सती के गौण रूप को तथा परम्परागत मूल्यों को ही प्रचारित किया जाता है।

इसी तरह के कई मुद्दों पर इस समिति ने अपनी आपत्ति व्यक्त की थी। लेकिन सरकारी शिक्षण संस्थान ऐसे प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण और तथ्यों के प्रति पूर्णतः उदासीनता बरतते रहे हैं। इसका एक प्रबल प्रमाण यही है कि समिति ने एन.सी.ई.आर.टी. सन् 1975 के दस वर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम के दस्तावेज में लिंगगत भेदभाव बरते जाने के कुछ मुद्दों की ओर ध्यान आकर्षित किया था। तब इस संस्थान ने लड़कियों से संबंधित सारे प्रसंग निकाल दिये थे न कि उनमें निहित मूलभूत दृष्टिकोण को सुधारा या बदला गया था। यही देश के सर्वोच्च शिक्षण संस्थान समस्याओं के प्रति ऐसा व्यवहार करता है तो अपनी घुट्टी में भेदभाव पीकर वयस्क होने वाले समाज को लड़के-लड़की में भेद करने का कोई दोषी ठहराना

हास्यास्पद होगा।

आज विश्वविद्यालय स्तर पर स्त्रियों के लिए शोध, स्नातकोत्तर, स्नातक पेशे की माध्यमिक, प्राथमिक, व्यवसायिक एवं विशेष शिक्षा आदि सभी स्तरों पर आशातीत प्रगति हुई है। प्राईमरी स्तर पर 40% लड़कों की तुलना में लड़कियाँ मात्र 17% ही हैं। माध्यमिक स्तर पर सन् 1901 में लड़कियों की संख्या दो लाख थी। सन् 1961 में यह संख्या बढ़कर 52 लाख हो गयी। लेकिन अनुपात की दृष्टि से लड़कियों की सख्यां लड़कों के मुकाबले केवल पाँचवां भाग ही रही। अन्त में 21% लड़कों की संख्या की तुलना में लड़कियाँ केवल 7% ही रही। इस प्रकार लड़के-लड़कियों की यह असमानता शिक्षक, नर्स, ग्रामसेविका, समाज सेविका, जैसे अन्य व्यवसायों में पुरूषों के अनुपात पर असर डालती है। इस कमी को दूर करने के लिए शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में निम्न सुझाव दिये गये -

1. स्त्री शिक्षा के लिए आवास का निर्माण

2. प्रशिक्षण सुविधाओं में सुधार
3. स्त्री शिक्षकों की भर्ती

4. गाँव में लड़कियों के लिए छत्रावास
7. विद्यार्थियों को उपयुक्त प्रेरणा।

6. माध्यमिक स्तर पर लड़कियों की निःशुल्क शिक्षा
5. प्रौढ़ स्त्रियों की अंशकालिक (पार्ट टाइम) सेवाओं में उपयोग

व्यवसाय और तकनीकी शिक्षा में स्त्रियों को अनेक सुविधाएँ प्राप्त है। किन्तु वाणिज्य, इंजीनियर, तकनीकी एवं औद्योगिक कला तथा शिल्प, पशु चिकित्सा आदि के प्रशिक्षण में अभी उनके लिए वांछनीय सुविधाएँ नहीं है। देश के बंटवारे के बाद विधवाओं, विस्थापित एवं अनाथ स्त्रियों के लिए भी सरकार ने हर राज्य में सीना-पिरोना और बुनाई के उत्पादक एवं प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किए। इनमें कुछ प्रशिक्षण स्कूल की सुविधाएँ उपलब्ध है। कस्तूरबा गाँधी ट्रस्ट में भी सामुदायिक विकास केन्द्र के लिए प्रशिक्षण का प्रबन्ध है। केन्द्रीय श्रम और रोजगार मंत्रालय की प्रशिक्षण संस्थाओं में स्त्रियों को कपड़े काटना, सीना, कसीदाकारी आदि कामों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारतीय समाज में नारी का स्थान और परिस्थिति का एक स्वरूप प्रस्तुत करने में अनेक कठिनाईयाँ हैं, क्योंकि लिखित अभिलेख धार्मिक प्रकृति के हैं, जो अधिकतर मानवेतर देवी-देवताओं, राजाओं, ऋषियों एवं अन्य अधिभौतिक व्यक्तियों के क्रिया-कलापों के उल्लेख से भरे हुए हैं। वैदिक काल से पूर्व समाज में स्त्रियों के स्थान के लिए विश्वस्त रूप से कुछ भी कहना संभव नहीं है, किन्तु आर्यों के पहले की सभ्यता इतनी विकसित अवश्य थी कि उसने परवर्ती सभ्यता को पर्याप्त प्रभावित किया। प्राचीन काल में महिलाओं को वैदिक साहित्य का अध्ययन करने की पूरी सुविधा प्राप्त थी। कहा जाता है कि ऋग्वेद की कुछ साहित्यों की रचना महिलाओं द्वारा की गयी थी और बौद्धों ने भी अपने मठों में निवास करने वाली विदुषियों के लिए समुचित शिक्षा की व्यवस्था की थी। बौद्ध विदुषी महिलाओं में शुभा, अनुपमा तथा सुमेधा प्रमुख थी। माना जाता है कि थेरी गाथाओं की रचना में महिलाओं का भी हाथ रहा है। इस समाज में समस्त वर्गों के लिए चाहिए स्त्री वर्ग हो अथवा पुरूष वर्ग दोनों को समान रूप से शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। प्रत्येक आर्य वह चाहें स्त्री हो अथवा पुरूष, साहित्य तथा धर्म की प्रारम्भिक शिक्षा अवश्य लेता था। प्राचीन भारतीय समाज में विद्यमान संयुक्त परिवार भी इस कार्य में सहायक सिद्ध हुआ,

जिससे लड़कियों की शिक्षा निर्विध्न रूप से संचालित होती रही। शिक्षा की व्यवस्था "शक् संहिता, उत्तर संहिता" उपनिषद् एवं सूत्रकाल में भी चलती रही। इस काल में संयुक्त परिवार, स्त्रियों की प्रगति में बाधक न होकर सहायक सिद्ध हुआ, क्योंकि परिवार के प्रत्येक सदस्य का जीवन धार्मिक मान्यताओं तथा आदेशों से आबद्ध था। इस युग की लड़कियाँ मंत्र का उच्चारण करती थी। मध्यकालीन भारत में मुसलमानों के आक्रमण और मुगल साम्राज्य की स्थापना के बाद नारी की स्थिति अत्यधिक सोचनीय हो गयी। ब्राह्मणों ने हिन्दुत्व की रक्षा और साथ ही रक्त की शुद्धता एवं नारियों के सतीत्व की रक्षा के उद्देश्य से स्त्रियों से संबंधित नियमों को अत्यधिक कठोर बना दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगलकालीन भारत में स्त्री शिक्षा किसी भी क्षेत्र में संतोषप्रद नहीं थी, जिसका प्रमुख कारण मुस्लिक शासकों की दमनकारी प्रवृत्ति तथा नारी के प्रति उनकी विकृत मानसिकता थी। ब्रिटिश काल में पुरूषों की स्थिति स्त्रियों से उच्च थी। स्त्रियों की पारिवारिक स्थिति एक सेविका जैसी रही।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इनका पर्याप्त शोषण हो रहा था, इसी शोषण के विरूद्ध 10वीं शताब्दी के अन्त एवं 20वीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में सामाजिक सुध ार आन्दोलन प्रारम्भ हुए। इन आन्दोलनों में स्त्रियों के परम्परागत नियोग्यताओं को समाप्त करने का प्रयास किया गया। समाज के कुछ बुद्धिजीवियों ने स्त्रियों की गिरती हुई दशा को सुधारने का कार्य किया। प्रारम्भिक सुधार आन्दोलन के प्रवर्तक ज्योतिबा राव फुले, राजा राम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, गोविन्द रानाडे, महर्षि कार्वे, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती, बहरामजी, मालवारी, दुर्गाराय, डॉ॰ अम्बेदकर आदि थे। इन समाज सुधारकों ने सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध, बाल विवाह, बहु विवाह, शिक्षा एवं सम्पत्ति के अधिकारों की उपेक्षा जैसी समस्याओं को दूर करने का प्रयास किया।

सन् 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में देश से साक्षरता के कलंक को हमेशा के लिए मिटाने के उद्देश्य से सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने का लक्ष्य रखा गया। लेकिन इस लक्ष्य में शिक्षा पर केन्द्र और राज्यों का कुल खर्च सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत से अधिक कभी नहीं हो सका। दसवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा को उच्च प्राथमिकता देते हुए इस क्षेत्र के लिए 43.825 करोड़ रुपये के आवंटन की व्यवस्था की गई है, जबकि नौवीं योजना में यह राशि 24.904 करोड़ रुपये ही थी। यानि इस खर्च में 76 प्रतिशत की वृद्धि की गई है। शिक्षा के क्षेत्र में भी प्राथमिक शिक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया गया है।

सन् 2002 में 14 साल तक की उम्र के सभी बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संसद ने 86वीं संविधान संशोधन विधेयक पारित किया। इस कानून के बन जाने से भारत में साक्षरता की दर बढ़ रही है। संयुक्त राष्ट्र विकास का कार्यक्रम की मानव विकास रिपोर्ट के अनुसार प्रौढ़ साक्षरता दर यानी 15 वर्ष से अधिक की आयु के लोगों में साक्षरता की दर की लिहाज से हम चीन और श्रीलंका जैसे देशों से पीछे हैं। सन् 1999 में चीन में इस आयु वर्ग में साक्षरता 85.8 प्रतिशत और श्रीलंका में यह 91.9 प्रतिशत थी। इसके विपरीत सन् 1999 की जनगणना में भारत में प्रौढ़ साक्षरता सिर्फ 58 प्रतिशत ही थी। फिर भी सन् 1951 से 1999 तक की अवधि में देश में समग्र साक्षरता का 18.33 से बढ़कर 64.84 प्रतिशत पहुँचना इस बात का प्रमाण है कि हमें अभी प्रयास करने होंगे।

निष्कर्षः

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था को जनतांत्रिक बनने में समय लगता है। भारत में महिला आन्दोलन का राजनीतिक व्यवस्था पर काफी दबाब रहा है कि वहाँ महिलाओं को जगह मिले ताकि वे सार्वजनिक राजनीतिक क्षेत्र में अपने अधिकारों का प्रयोग ज्यादा कर सकें। महिलाओं को आरक्षण का नया मुद्दा उठाने में नागरिकता संबंधी पुराने तर्कों का भी सामना करना पड़ रहा है जैसे कि राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदारी के बाद तो वे दूसरे निष्कर्ष पर पहुँची थी। उस समय उन्हें लगा था कि व्यक्तिगत राजनीतिक बराबरी से उन्हें अपने अधिकार मिल जायेंगे लेकिन ऐसा हुआ नहीं। इसलिए अब व्यक्तिगत अधिकारों के बजाए वे न्यायोचित सामूहिक प्रतिनिधित्व और जवाबदेही को अपनी सशक्तता का साधन मान रही है तथा राजनीतिक संस्थानों से इसी की मांग कर रही है। महिला समूहों ने इन मुद्दों को लेकर काफी मतभेद हैं मगर एक बात पर सभी सहमत है कि राजनीति में प्रतिनिधित्व सभी महिलाओं के लिए एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। ग्राम पंचायत व जिला परिषद् स्तर पर महिलाओं के आरक्षण पर सभी महिला समूह एकमत है लेकिन संसद व विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व को लेकर वे भी एकमत नहीं है। इसमें मुख्य मतभेद उच्च वर्ग और उच्च जाति को लेकर है। शंका यह है कि कुछ समूहों और इन समूहों में कुछ महिलाओं का वर्चस्व न हो जाए। महिला आन्दोलन में इन मुद्दों पर विचार-विमर्श चल रहे हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः

1. चंचरीक कन्हैयालाल, महात्मा ज्योतिबा फुले, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली, 1988
2. कुकरेजा, सुन्दर लाल, पिछले 50 वर्ष की उपलब्धियाँ और भावी संभावनाएँ, योजना,अगस्त, 1998, अंक-10, पृ०-6
3. पंत, प्रदीप, क्या लड़कियाँ सचमुच बीच में ही पढ़ना छोड़ देती है ? समाज कल्याण, मार्च,1997, पृ०-7
4. कुमारी, सुशीला, शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की उपेक्षा, समाज कल्याण मार्च, 1997, पृ०-9
5. अल्टेकर, ए०एस०, द पोजीशन ऑफ वूमेन इन हिन्दू सिवलाइजेशन, अध्याय-11, पृ०-305
6. देसाई, चित्रा, गर्ल्स स्कूल एजूकेशन एण्ड सोशल चेन्ज, बम्बई, 1976
7. कीथ, एफ० ई०, हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृ०-74
8. सिंह, श्याम सुन्दर, शिक्षा की दौड़ में भारतीय महिला, योजना, 15 मई, 1993 अंक-6, पृ०-19-20
9. डॉ० सूर्य प्रकाश अग्रवाल, निरक्षरता के खिलाफ खोखली लड़ाई, दैनिक जागरण, 28 सितम्बर, 2000, पृ०-10
10. पाठक, पी० डी०, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ, 1998
11. विश्वमित्र, जगेन्द्र, नारी शिक्षा जीवन की बुनियाद है, 1997
13. Pandey, Balajee, Women Education, 1985

♦ ♦ ♦